अध्याय पञ्चम - चिंतन

सुनकर यह सविषाद, प्रकट था, जब समीप हो काल।
तब विवेक को दंशित करता, भ्रम का भीषण व्याल[1]।। 1

नहीं दोष कुछ तेरा है मरू, दोषी निपट अभाव।
अन्न और जल दूर, नहीं है, गज भर शीतल छांव।। 2

राजित है अज[2] तदपि न सर्जन, होता यहां प्रवृत्त।
है रज[3] का अतिरेक तदपि है, क्यों निसर्ग[4] सुनिवृत्त।। 3

सर्जन है अत्यल्प विसर्जन[5], अतः न मरू को ज्ञात।
वर्जन है न विपथ का अर्जन, नय[6] साधित अज्ञात।। 4

दिशा ज्ञान के लिए ताकना, पड़ता नभ की ओर।
क्योंकि दिग्भ्रमित करता नर को, मरू का रूप कठोर।। 5

1. सर्प 2. बकरा, ब्रह्मा 3. धूल, रजोगुण 4. प्रकृति 5.त्याग 6. नीति से सिद्ध/प्राप्त

निज आश्रित को भी दिखलाता, मृगजल[1] मरू यह क्रूर।
काल ग्रास बनने को आतुर, हैं ये कल्पित शूर।। 6

किन्तु अजा[2] अनुगमन इसे प्रिय, लिए उभय गुण धार।
पटु आवरण और विक्षेपों, पर इसका अधिकार।। 7

यह दण्डक[3] वन नहीं तदपि क्यों, हुआ अपर खरधाम[4]।
जनस्थान[5] के शासक को क्या, भाया विजनस्थान[6]।। 8

क्यों न बनें इसके आश्रय में, छिद्रान्वेषी[7] भूत[8]।
कराघात[9] मार्तण्ड[10] कर रहा, रूठे हैं जीमूत[11]।। 9

जहाँ किरणगण तक छल करता, अस्थिर हों भूरूप।
क्यों न छद्म हो तृषा तरूणियुत, मनो जगत का भूप।। 10

आवृत हैं बहु पंथ भटकता अतः तृषाकुल पांथ[12]।
लक्ष्य न रूचि अनुकूल मार्ग से मिलता अतः अशांत।। 11

मात्र उष्णता और शुष्कता कर सकता निर्यात।
मात्र आवरण और छलावा हैं रेणुधि[13] को ज्ञात।। 12

नहीं वारि भी सुलभ देखले, जिसमें यह निज रूप।
तृषा ताप नीरसता हिंसा, छल से हुआ विरूप[14]।। 13

1. मृगमरीचिका 2. बकरी/प्रकृति/माया 3. दण्डकारण्य 4. गधा, खर, राक्षस 5. खर, राक्षस का राज्य 6. निर्जन 7. विवर ढूढ़ने वाला 8. प्राणी 9. तीक्ष्ण किरणों का प्रहार 10. सूर्य 11. मेघ 12. यात्री 13.मरूस्थल 14. कुरूप

प्राची कर उद्भूत अर्क[1] को, जाग्रति लाती पूत[2]।
निगल प्रतीची[3] उसे तिमिर से, जग करती अभिभूत[4]।। 14

लगा विधाता पुनः कर रहा, आयोजित कुरूक्षेत्र।
हमें ताकते हैं आशा से, आज कोटिशः नेत्र।। 15

कायरता जब समझी जाती, सद्भावना विशुद्ध।
सहकर भी अपमान नहीं जो, नर होते हैं क्रुद्ध।। 16

आग उगलती हों बंदूकें, तब संयम उपदेश।
जो देते वे हैं विद्रोही, अरिहितपरक विशेष।। 17

विजय माँगती है हर रण में, विपुल रक्त का दान।
अमितत्याग गुरू उद्यमफल है, शान्ति और सम्मान।। 18

ताड़न से ही जो हो सकता, वशवर्ती पशु मूढ़।
उसको जो पुचकार रहे हैं, वे समाजरिपु गूढ़।। 19

इसके अघ[5] पर धूल डालने, वाले जाते भूल।
इसी रेणु को वेध उगेगें, अति पीड़ाकर शूल।। 20

केवल बाहर नहीं संक्रमण, भीतर भी है रोग।
पोषक तत्वों का परजीवी, प्रमुदित करते भोग।। 21

1. सूर्य 2. पवित्र 3. पश्चिम दिशा 4. पराजित 5. पाप

जब होता वपु रूग्ण अन्य के, शिर पर धरते दोष।
मूढ़मनुजगण से करवाते, अपना नित जयघोष।। 22

उठता जब जनरोष दिशा ही देते उसको अन्य।
इन धूर्तो के लिए स्वार्थ में, सब कुछ है अनुमन्य[1]।। 23

केवल बाड़ नहीं ढो सकती, उपवन रक्षा भार।
आवश्यक इस हेतु दण्डयुत, रक्षक बल अधिकार।। 24

इससे भी आवश्यक होता, स्वामी का संकल्प।
क्या बचता उद्यान रहे वह, यदि सोचता विकल्प।। 25

वाटिकेश[2] का यदि सुदूर हो, रक्षित भव्य निवास।
तो फिर कहां क्षुद्र बातों पर, है विचार अवकाश।। 26

रक्त बहाया रक्षक गण ने, पुरखों ने बहु स्वेद[3]।
अनायास मिल गयी वाटिका, स्वामी को क्या खेद।। 27

रक्षक मरते रहें कराहे, चाहे पीड़ित बाड़।
देता वह उपदेश ज्ञान के, ले विवेक की आड़।। 28

खाता रहता दीर्घग्रीव वह, उष्ट्र मुदित फल फूल।
कर देता घोषणा वाटिका, ही है उसका मूल।। 29

1. अनुमति योग्य 2. बगीचे का स्वामी 3. पसीना

पा प्रच्छन्न समर्थन कुछ का, ऊँट हुआ आश्वस्त।
परामर्श हटने के करता, यह सावज्ञ[1] निरस्त।। 30

पश्चिम और निहार रहे कुछ, आस भरे मरूबन्धु।
इस समुदार समाज मध्य हैं, छिपे हुए विष विन्दु।। 31

आक्रांता तक हुए धरा[2] सुत, माना इसको देश।
उत्तर पश्चिम ओर ताकते, नहीं रहे अनिमेष[3]।। 32

पर कुछ अब भी विकल खोजते, फिर अतीत में मूल।
जाने क्यों जा रहे जननि के, ही नितांत प्रतिकूल।। 33

जिस भू के तत्वों से निर्मित, भौतिक वपु आकार।
नहीं मोह पाया धरणी का, जिनको स्नेह दुलार।। 34

कुछ कृतघ्न परजीवी जिनको, वांछित केवल भोग ।
शत्रु कर रहा इनका केवल, निज हित में उपयोग ।। 35

परजीविता रहा हो जिनका, सदियों से सिद्धांत।
अर्जन उनको लगता कटुतर, हो जाते उद्भ्रान्त[4]।। 36

मात्र एक लघु वर्ग प्रशासित, पीड़ित ताड़ित देश।
सदियों तक यह रहा किन्तु अब, बदल चुका परिवेश।। 37

1. अवज्ञा सहित 2. भूमि के पुत्र 3. अपलक 4. भ्रमित, व्यग्र

जनगण को जब मिला यहाँ पर, सत्ता का अधिकार।
आयुध बल पर रूका प्रपीड़न, शोषण का व्यापार।। 38

कोई कारण नहीं कि अब हो, बहु व्यग्रता अशान्ति।
तब क्यों फैलाये जाते हैं, असंतोष, भय, भ्रान्ति।। 39

सबको पाल रही यह वसुधा, सब पर है वात्सल्य।
पुत्र नहीं स्वामी बनने को ,उत्सुक बस यह शल्य।। 40

जो रहते दंशन को उद्यत, करते क्षीण शरीर।
अति घातक है उन सर्पो को, नित्य पिलाना क्षीर ।। 41

जागो त्यागो भ्रान्ति रेत में, नहीं तुम्हारा भाग्य।
छोड़ कल्पतरू तरू बबूल के, कौन लगाता प्राज्ञ।। 42

दुस्त्यज[1] किंतु सदा प्राणी का, देखा गया स्वभाव।
खलता उद्यानस्थ उष्ट्र को, कंटक वृक्ष अभाव।। 43

परजीवीगण के यदि चलते, रहे अबाधित कृत्य।
स्वामी होकर भी हम निन्दित, बने रहेंगे भृत्य[2]।। 44

करो अनावृत[3] इन कुटिलों को, मायाविता प्रवीण।
क्षेम सुनिश्चित तभी, शत्रु के, गूढ़[4] पुरूष हों क्षीण।। 45

1. जिसे कठिनाई से त्यागा जा सके 2. दास, नौकर 3. उद्घाटित, प्रकट 4. गुप्तचर

हम सोते निश्चिन्त मरूस्थल, करता सतत् प्रयास।
कैसे इस नन्दन कानन का, करूँ खण्डशः ह्रास।। 46

जब तक तुम हो सुप्त, सघन तम सद्यः लेता घेर।
जाग्रति होते ही विलयन में, क्या लगती है देर।। 47

सारा सार जागरण में है, मात्र सुप्ति है व्याधि।
समझ न लेना इस सुषुप्ति को, मूर्च्छा को न समाधि।। 48

हो सकते हैं क्षम्य सुप्त भी, पर जाग्रति अपदेश[1]।
जो करते हैं आत्म प्रवंचक[2], वे ही शत्रु विशेष।। 49

जो जाग्रत भी हैं यथार्थ में, यदि निष्क्रियता बद्ध।
नहीं रोक पाते उस तम को, जो प्रसार सन्नद्ध[3]।। 50

बस अभिरक्षणहित चिंतातुर, विकल मनाते क्षेम।
नहीं कापुरूष[4] निलयबद्ध[5] इस, जग में रहता हेम[6]।। 51

हर अवाप्ति[7] के बाद एषणा, होती अधिक अशम्य[8]।
खल का तुष्टीकरण अतः है, अपकृत[9] परम अक्षम्य।।52

साधिकार मांगे जाते है, ग्राम, नगर फिर प्रान्त ।
निजप्रभावविस्तारलक्ष्यरत, रहता कुजन अश्रान्त[10]।।53

1. बहाना 2. स्वयं को धोखा देने वाला 3. कमर कसे हुए 4. कायर 5. घर में सीमित
6. स्वर्ण 7. प्राप्ति 8. जिसे पूरा न किया जा सके 9. पाप, दुष्कर्म 10. न थका हुआ

स्वगृह बहिस्कृत दाता को ही कर देता खल हन्त।
पात्रेतर[1] दाक्षिण्य[2] सदाही, पाता कटुतर अन्त।।54

यह कोरा सिद्धान्त नहीं है भोगा है बहु बार।
पर त्रुटि आवर्तन[3] हम सबका, बना मूल अधिकार।।55

रिपुअभिभाषकता[4] भारत में, है प्रबुद्धता चिन्ह्।
हैं कुवाद रत कई स्वयंभू, प्राज्ञंमन्य[5] अखिन्न।।56

करूणा का सागर बन जाता, इनका ह्रदय तुरन्त।
जब पाता दुर्दम्य[6] विलम्बित, भी न्यायोचित अन्त।।57

इनकी मानवता न जागती, मरते जब निर्दोष।
अत्याचारी के प्रति तनु[7] भी, नहीं दिखाते रोष।।58

चिरदासत्व विमुग्ध छद्मरत, बहुपाखण्ड प्रवीण।
अपसंस्कृतिपोषक निज निंदक, आत्महीन बलक्षीण।।59

इन मनीषियों को क्यों विस्मृत, हो जाता यह सत्य।
बुधजनवध[8] विजयोत्सुक अरि का, होता प्रथम कुकृत्य।।60

यह मानवतावाद मात्र है यश एषा[9] उद्भूत।
दंडाभावप्रमत्त अल्पधी[10], बने वैरि के दूत।।61

1. कुपात्र 2. उदारता 3. भूल दोहराना 4. शत्रु की वकालत 5. स्वयं को ज्ञानी मानने वाला
6. जिसका दमन कठिन हो 7. थोड़ा 8. विद्वानों का नाश 9. कामना 10. मन्दबुद्धि

भूले हम षाड्गुण्य[1] मात्र शम[2] रहा हमें आराध्य।
हीनशत्रुकृत अतः उपद्रव, सहने को हैं बाध्य।।62

परम बली हो वैरि शमाश्रय होता तब व्यवहार्य।
अधिकारी न निकृतिरत[3] इसका, छलप्रिय क्षुद्र अनार्य।।63

रवि के होते भी छिपता है, विवरों में तम धूर्त।
अतः मशाल जलानी पड़ती, करने उसे अमूर्त।। 64

पर है यह सन्तोष कि चिर से, करता गुहा निवास।
तिमिर विलीन निमिष[4] में होता, आते शुभ्र प्रकाश।। 65

जब–जब करता प्राप्त समुन्नति, नीरस और कठोर।
छा जाता है तम भूतल पर, आती विपदा घोर।। 66

किन्तु सुखद यह तथ्य कि मरू का, क्षणिक सदा उत्कर्ष[5]।
वेग पवन का हटा कि पाते, रजकण द्रुत[6] अपकर्ष[7]।। 67

सफल न होता मरू विनाश में, रहता गूढ़ निसर्ग[8]।
मिलते ही जल छटा बिखरती, हॅसता पादप वर्ग।। 68

यदपि शिखर तक पहुॅचाता रज, बारंबार समीर।
तदपि कहॉ टिक पाता लघुतर, वहॉ असार[9] अधीर।। 69

1. राजनीति के छः गुण 2. शांति 3. हानि करने में लगा हुआ 4. पल झपकते, क्षण मात्र में 5. उन्नति 6. शीघ्र 7. अवनति, पतन 8.सृष्टि, प्रकृति 9. सारहीन, जिसमें तत्व न हो

अन्याश्रित है छद्म समुन्नति, अफल अन्य की शक्ति।
कौन रहा चिर तक श्रीमण्डित[1], परबलगर्वित व्यक्ति।। 70

मरू की ज्ञात सखरता[2] जग में, किन्तु विखरता तूर्ण[3]।
कर मैं यहॉ प्रखरता घर्षण, मात्र निखरता चूर्ण।। 71

सहकर चिर वैषम्य दृषद[4] तक, हो जाते हैं भग्न।
समता रहित सत्व[5] उर रहता, खंडित शोकनिमग्न।। 72

अपराधी की सतत उपेक्षा, निर्घृणतर[6] अपराध।
इससे बढ़ता मात्र मनोबल, करता पाप अबाध[7]।। 73

औषधि की लघु मात्रा से ही, जो भर जाता घाव।
काल अपनयन[8] से हो जाता, भीषण रक्तरिसाव।। 74

बहु साधन, जन, धन, खोता है, चिर तक सुप्त समाज।
अवसर देख क्षुद्र जन उस पर, करने लगता राज।। 75

संस्कृति रक्षण हित फिर करना, पड़ता है संग्राम।
खोने पड़ते अगणित योद्धा, जलते हैं बहु ग्राम।। 76

अतः विवेकी वही समय पर, जो कर ले उपचार।
वही सफल जो करता जग में, यथा योग्य व्यवहार।। 77

1. वैभवयुक्त 2. तीक्ष्णता 3. शीघ्र 4. पत्थर 5. प्राणी 6. अत्यंत दयाहीन 7. सतत बिना रूकावट के 8. व्यतीत करना, वर्वाद करना

सहनशीलता और क्षमा का, चिर तक दुर्वह भार।
एक पक्ष ही कब तक झेले, निश दिन होते वार।। 78

तनु होता है तभी अनामय, जब हो इसकी शुद्धि।
सारवान वपु में ही होती, कटुनिर्णय क्षम बुद्धि।। 79

रूग्णमनोवपु क्या कर सकते, बलशाली यह देश।
जिनका केवल लक्ष्य बनाना, निज हित कोष अशेष।। 80

वह प्रज्ञा है बांझ न निर्णय, करती त्वरित प्रसूत।
अल्प प्रज्ञ भी उद्यम रत यदि, कर देता परिभूत[1]।। 81

वाणी विग्रह[2] से अरिनिग्रह[3], का जो व्यर्थ प्रयास।
करते हैं वे मात्र बढ़ाते, रिपु का जय विश्वास।। 82

कायरता में या हिंसा में, हिंसा ही वरणीय।
कहकर मोहन गये कि यदि यह, जनहित में करणीय।। 83

प्रयोग हीन है पड़ी प्रभूत अस्त्र संपदा।
तथापि झेलते निरीह लोग नित्य आपदा।
अनिर्णयात्मिका कुबुद्धि शासिका बनी जहां।
अभीक[4] शत्रु घूमते जघन्य कृत्य हैं वहां। 84

1. पराजित 2. वाक् युद्ध हो हल्ला 3. शत्रु का नियंत्रण विरोध 4. निर्भय

असह्य हो गयी अतीव शत्रु की अनीति है।
निरीह प्राण नाश की दुरन्त निंद्य रीति है।
असंख्य गोद और मांग शून्यता दिखा रही।
विडम्बना अभूतपूर्व वेदना सहे मही।। 85

वितर्क मात्र जो समर्था बुद्धिमान कौन हैं।
सराहनीयवीर्य भी प्रवीर सर्व मौन हैं।
उबार लें उसे पुनः प्रचण्ड शत्रु को हरा।
वराह राह देखती कराहती वसुन्धारा।। 86

संशय जलद को भेद दृढ़ संकल्प रवि अब उदित हो।
निज शक्ति में विश्वास जाग्रत हो त्रसितजन मुदित हो।
उर विवरगत हो त्वरित शंका सर्पिणी रिपु क्षुभित हो।
अब और क्यों अरिप्राणभक्षण हेतु आयुध क्षुधित हो। 87

तुम भी करो पथ कंटकित मरू की मिटे गतिमानता।
कंटक निकालो शल्य से है इसी में मतिमानता।
करणीय सब उद्यम हमें इस राष्ट्र के सम्मान में।
शम चाहिए जिनको अभी वे ढूंढ लें शमशान में।। 88

करके निश्चय अरिदारण का, भेजा दृढ संदेश ।
मूढ़ प्रबोधक ब्रह्मा के भी, नहीं शक्य उपदेश ।। 89

वृत्त पुरातन अतः रह गया, तुमको यह अज्ञात ।
सेल्यूकसमुख की विवर्णता, आर्यखड्गद्युतिजात ।। 90

फहरा ध्वज आसिन्धु यवन कर, उच्छेदित वह मौर्य ।
शाश्वत नायक बना भरतभू, का जगस्वीकृतशौर्य ।। 91

विक्रम के आदित्य प्रकट जो, भूगोपनक्षम गुप्त ।
जिनका विरूद शकारि कर गए, शक्ति शकों की लुप्त ।। 92

हूणहरिणकेशरी अप्रतिभट, स्कन्दोपम थे स्कंद ।
रोके मेरू समान खड़े हो, भीषण बहु आस्कंद ।। 93

प्रकटे मिहिर समान समर में, हुआ मिहिरकुल स्तब्ध ।
यशोधर्मकृत विपुल पराक्रम, से थी जय उपलब्ध ।। 94

इसी तराइन में गौरी को, प्रथम प्राण का दान ।
दिया पिथौरा ने था हंसकर, रख संस्कृति का मान ।। 95

युद्ध विराम संधि पर करके, राजपूत विश्वास ।
प्रातः संध्याकर्म निरत थे, न्यस्तायुध सायास ।। 96

प्रत्यागम आज्ञा छल करके, सूर्योदय से पूर्व ।
किया आक्रमण था गौरी ने, यह वीरता अपूर्व ।। 97

मन से दास मात्र कर सकता, बैरी का जयगान ।
मरू को फली दासता पाया, सिंहासन का दान ।। 98

पहला आक्रांता जो आया, वह तो था अफगान ।
था द्वितीय मंगोल, कर दिए, जिसने पुर श्मशान ।। 99

तूरानी था तुर्क तीसरा, क्या तुझको है ज्ञात ।
इब्राहिम लोदी को दी थी , पानीपत में मात ।। 100

चौथा था ईरानी शासक, विस्तारक अति क्रूर ।
गया लूट धनमान मुगल का , लुप्त प्राय था नूर ।। 101

पंचम आक्रांता जिसके मरू, करते हो गुणगान ।
लूट बढ़ा पंजाब प्रांत को, दुर्मद वह अफगान ।। 102

इनमें से तुम कौंन कर रहे, जो मिथ्या अभिमान ।
साथ विजेता के जुड़ने का, यह क्या नया विधान ।। 103

कटे तुम्हारे भी पुरखे थे, गया वित्त सम्मान ।
जले ग्राम थे ध्वस्त दुर्ग भी, नगर बने शमशान ।। 104

किए जघन्य जिन्होंने तेरे, जन पर अत्याचार ।
आज मूढ़ता वश उनकों ही, रहे शीश पर धार ।। 105

देखो अब उफान पर आया, आर्यावर्ती रोष ।
देखो अब उद्घाटित होता, बल का अक्षय कोष ।। 106

कंडु निवारणार्थ वारणकृत, घर्षण भी क्षय हेतु ।
बनता तरू को और बहाता, नद क्षण भर में सेतु ।। 107

आर्यवीर सन्नद्ध हुए हैं, हरने वसुधा दोष ।
यह संदेश पहुँचते होगा, भैरव भेरी घोष ।। 108

वसु की शाश्वत तृषा मिटाए, अब तेरा ही रक्त ।
खड्ग भेंट चढ़ते जो रहते, निशदिन असि अनुरक्त ।। 109

अध्याय षष्ठ - आह्वान

सावधान ! बढ़ रहा निरंतर, सिकतालय इस ओर ।
रचता नूतन व्यूह छिपाए, आयोजन कुछ घोर ।। 1

नहीं कदापि उपेक्ष्य विजित भी, लघु भी सुचिर अमित्र।
फिर यह तो मायावी, लोभी, पीड़क, गूढ़ चरित्र ।। 2

क्षुधित[1] श्वानदल हुआ संगठित, आगे बढ़ता क्रुद्ध।
बली केशरी[2] तक को कुछ क्षण कर सकता है क्षुब्ध।। 3

त्यागो तन्द्रा उठो मृगाधिप[3], करो गर्जना घोर।
जिसकी प्रतिध्वनि से हों गुञ्जित, गिरिघाटी के छोर।।4

तुमको पा प्रसुप्त निर्भय हो, घूम रहे लघु जन्तु।
प्रतिदिन होते शीर्ण[4] यहाँ पर, मानवता के तन्तु।। 5

1. भूखा 2. सिंह 3. सिंह 4. छिन्न भिन्न